Q1 किन परिस्तिथियों में एक दृश्यमान स्वामी द्वारा अचल संपत्ति का अंतरण वास्तविक स्वामी पर बाध्यकारी होगा? व्याख्या कीजिये|

धारा 41 दृश्यमान स्वामी द्वारा अन्तरण - जहां कि स्थावर सम्पत्ति में हितबद्ध व्यक्तियों की अभिव्यक्त विविक्षित सम्पत्ति से कोई ऐसी सम्पत्ति का दृश्यमान स्वामी है और उसे प्रतिफलार्थ अन्तरित करता है, वहां अन्तरण इस आधार पर शुन्यकरणीय नहीं होगा कि अन्तरक वैसा करने के लिए प्राधिकृत नहीं था, परन्तु यह तब जब कि अन्तरिती ने यह अभिनिश्चित करने के लिए अन्तरक करने की शक्ति रखता था , युक्तियुक्त सावधानी बरतने के पश्चात् सहभावनापूर्वक कार्य किया हो।

धरा 41 में प्रिवी कौंसिल द्वारा **रामकुमार** बनाम **मैक्वीन** नामक वाद में प्रतिपादित विधि के सिद्धान्तों को विधायी रूप दिया गया है या विधायी मान्यता दी गई है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि धारा 41 के प्रावधान रामकुमार बनाम मैक्वीन नामक बाद में प्रतिपादित सिद्धान्तों पर आधारित है। यह धारा कोई नया नियम नहीं प्रतिपादित करती है अपितु जो विधि (नियम) पहले से थी उसे अधिनियमित करती है। प्रीवी कौंसिल ने इस वाद में जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया था यह कुछ निम्न प्रकार से है :

स्वभाविक साम्या का यह एक सिद्धान्त है और अनिवार्यतः व्यापक रूप से लागू होता है कि जहां एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को (पहले वाले व्यक्ति की) एक सम्पत्ति को स्वामी बनने की अनुमति देता है और एक तीसरा व्यक्ति उसे खरीदता है प्रतिफल देकर, दश्यमान स्वामी से, इस विश्वास के साथ कि वही वास्तविक स्वामी है वहा यह व्यक्ति जो ऐसी अनुमति देता है उसे उसके गुप्त स्वत्व के आधार पर सम्पत्ति को वापस पाने की अनुमति नहीं दी जा सकती जब तक कि वह यह साबित न कर दे की क्रेता को उसके वास्तविक स्वत्व को प्रत्यक्ष या आंवयिक सूचना थी. या वहां ऐसी परिस्थितियों विद्यमान थी जिसकी उसे (क्रेता को) छानबीन करनी चाहिए थी और यदि यह उनकी छानबीन करता तो उसे वास्तविक स्वत्व का पता चल जाता |

दृश्यमान स्वामी (Ostensible Owner) - दृश्यमान स्वामी यह है जिसमें स्वामित्व के लक्षण है परन्तु वास्तविक स्वामों नहीं है। दूसरे शब्दों में दृश्यमान स्वामी वह है जिसमें स्वामी के सभी लक्षण है परन्तु वह वास्तविक स्वामी नहीं है जैसे किसी में स्वत्व हो, जिसके पास कब्जा हो, जिसका नाम राजस्व अभिलेख में दर्ज हो वह दृश्यमान स्वामी है। यह सब स्वामित्व के लक्षण है। यह सब होते हुए भी वह वास्तविक स्वामी नहीं है। यहाँ 'दृश्यमान स्वामी' का प्रयोग 'वास्तविक स्वामी' के विरोध में किया गया है।

स्वामी के सभी लक्षण होते हुए भी कोई व्यक्ति वास्तविक स्वामी नहीं हो सकता है। ऐसी परिस्थिति सामान्यतया वहां उठती है जहां सम्पत्ति बेनामी खरीदी जाती हैं। बेनामी सम्व्यवहार वह होता है, जहां वास्तविक स्वामी प्रतिफल का भुगतान करता है और सम्पत्ति को किसी दूसरे के नाम में खरीदता है। वह दूसरा व्यक्ति जिसके नाम में सम्पत्ति खरीदी जाती है वह बेनामीदार होता है। एक बेनामीदार दृश्यमान स्वामी होता है जहां एक पिता ने अपने अवयस्क पुत्रों के नाम में सम्पत्ति खरीदा यहां कलकत्ता उच्च न्यायालय ने गिरीन्द्र नाथ मुखर्जी बनाम सुमेन मुखर्जी नामक वाद में यह अभिनिर्धारित किया कि पुत्र दृश्यमान स्वामी थे क्योंकि उनके पास सम्पत्ति खरीदने का कोई साधन नहीं था और न तो पिता ने इस बात की अपेक्षा की थी कि ये सम्पत्ति के वास्तविक स्वामी होंगे।

वास्तविक स्वामी की सम्मति (Consent) - धारा के प्रावधानों के लागू होने के लिए दूसरों शर्त यह है कि दृश्यमान स्वामी' वास्तविक स्वामी की सम्मति से दृश्यमान स्वामी है। ऐसो सम्मति अभिव्यक्त से भी हो सकती है और विवक्षित भी । जहां वह व्यक्ति जो सम्पत्ति में हितबद्ध (स्वामी) है अभिव्यक्त रूप से घोषित करता है कि सम्पत्ति में उसका कोई हित नहीं है या दूसरा व्यक्ति वास्तविक स्वामी है, वहां दूसरे के दृश्यमान स्वामित्व के लिए सममिति अभिव्यक्त है। सम्पत्ति का वास्तविक स्वामी जिम्मेदार नहीं होगा यदि अन्तरक का दृश्यमान स्वामित्व उसके द्वारा अनुज्ञात न हो या सृजित न हो। वास्तविक स्वामी दृश्यमान स्वामित्व का सृजन सम्मति के अभिव्यक शब्दों द्वारा या अपने कार्य या आचरण द्वारा जिसने सम्मति का संकेत होता हो कर सकता है यदि वास्तविक स्वामी यह जानता है कि दृश्यमान स्वामी सम्पत्ति का अन्तरण कर रहा है वहां वह अपने को अन्तरण से अलग नहीं रख सकता या बचा नहीं जैसे एक माता जिसका कि सम्पत्ति में हित है उसे अपने पुत्र के द्वारा अनन्य रूप से अपनी सम्पत्ति मानकर बन्धक किये जाने को अनुज्ञात है और बंधकविलेखो यह बताते हुए अनुप्रमाणित करती है कि उसका सम्पत्ति में कोई हित नहीं है वहाँ यह अभिनिधारित किया गया कि माता की अभिव्यक्ति सम्मति से से पुत्र दृश्यमान स्वामी है।

यह प्रश्न कि किसी ने दूसरे में दृश्यमान स्वामित्व के सृजन के लिए अपनी अनुमति दी कि नहीं यह तथ्य सम्बन्धी प्रश्न है और इसका निर्धारण प्रत्येक वाद के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर किया जाना जाहिए में सम्मति स्वतंत्र सम्मति जैसा कि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 14 में परिभाषित है. होनी चाहिए |

अतः सम्पति उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव (असम्यक असर), कपट और दुर्व्यपदेशन से दूषित नहीं होनी चाहिए। अर्थात् स्वतन्त्र और विधिसम्मत होनी चाहिये। धारा 41 के प्रावधान पर लागू नहीं होते। अत: एक अवयक का संरक्षक जो अवयस्क की सम्पत्ति का अन्तरण करता है, वह अवयस्क को सम्मति से दृश्यमान कानूनी स्वामी

नहीं माना जा सकता है क्योंकि एक अवयस्क (अपनी अवयस्कता की अयोग्यता के कारण) कानूनी तौर पर अपनी सहमति नहीं दे सकता 12 विबन्ध का सिद्धान्त अवयस्कों पर लागू नहीं होता।

विवक्षित सम्मति का साक्ष्य (संकेत) व्यक्ति के आचरण से लगता है जैसे जहाँ वास्तविक यह जानता है कि दूसरा व्यक्ति उसको सम्पत्ति के साथ ऐसा व्यवहार कर सकता है, मानो वह सम्मपत्ति उसी की है और मूल सम्मति या | निष्क्रिय सम्मति देता है, वहां उसकी निष्क्रयता से सम्मति का संकेत मिलता है। सम्मति दृश्यमान स्वामित्व के लिए होनी चाहिए। अतः जहाँ एक सम्पत्ति के सह-अंशधारी सम्पत्ति का प्रबन्ध उनमें से एक के ऊपर छोड़ देते हैं जिसका भी नाम राजस्व अभिलेख में स्वामी के रूप में दर्ज है, वह कोई सम्मति नहीं। मौन विबन्ध रूप में कार्य नहीं करेगा जब तक कि वह ऐसा न हो।जिससे वह कोई जिससे यह विश्वास उत्पन होता है कि वह कोई पक्षकार जो मौन है उसका कोई अधिकार नहीं है। इसी प्रकार मात्र निष्क्रियता को भी सम्मति नहीं माना जा सकता। मात्र निष्क्रियता से कुछ और होना चाहिए अर्थात् कुछ शब्द या वास्तविक स्वामी के कुछ आचरण ऐसे होने चाहिए जिससे अन्तरिती में यह विश्वास पनपता हो कि अन्तरण कर्ता अन्तरण करने के लिए सक्षम है धारा 41 का सारतत्व यह है कि वास्तविक स्वामी का आचरण ऐसा हो जो अन्तरिती में अवश्य ही यह विश्वास पैदा करता हो कि उसका अन्तरक अन्तरण की शक्ति रखता है। जैसे 'क' एक हिन्दू पति ने अपनी पत्नी 'ख' के नाम में भूमि खरीदा। राजस्व अभिलेख में 'ख' का नाम दर्ज था। पत्नी सम्पत्ति से सम्बन्धित कारबार भी देखती थी। **'क'** की मृत्यु के बाद ने भूमि को **'ग'** को के बाद बन्धक रखा। 'ग' ने सम्यक् जांच पड़ताल करने के बाद सद्भावनापूर्वक विश्वास करते हुए कि "स्वामी है, बन्धक लिया। 'ग' ने अपने बन्धक के प्रवर्तन में सम्पत्ति की बिक्री का एक ढिक्री प्राप्त किया और भूमि खरीद लिया। परन्तु सम्पत्ति 'घ' के कब्जे में भी क्योंकि उसने यह सम्पत्ति 'क' के विरुद्ध धन के संदाय को डिक्री के निष्पादन में खरीदा था। 'ग' का बाद जो 'घ' के विरुद्ध सम्पत्ति का प्राप्त करने के लिए था, उसके पक्ष (**'ग'** के पक्ष) में डिक्री कर दिया गया। कलकता उच्च न्यायालय ने अनोपा मोहन बनाम नील फारमरी नामक बाद में यह अभिनिर्धारित किया कि 'क' ने अपनी विवक्षित सहमति से 'ख' के पक्ष में दृश्यमान स्वामित्व का निर्माण किया। यहां उसकी निष्क्रियता से दृश्यमान स्वामित्व का निर्माण हुआ। अतः अन्धको **'ग'** का हित सुरक्षित पाया गया क्योंकि उसने संप्रतिफल और सद्भावना पूर्वक बन्धक लिया था।

Q2 'लाम्बित वाद' के सिद्धांत की व्याख्या कीजिये। यह सिद्धांत प्रादन्याय से कितना भिन्न है?

Ans धारा 52 सम्पत्ति सम्बन्धी बाद के लंबित रहते हुए सम्पत्ति का अन्तरण- भारत की सीमाओं के अन्दर प्राधिकारवान या केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसी सीमाओं से परे स्थापित किसी न्यायालय में ऐसे वाद या, कार्यवाही के लंबित रहते हुए जो दुस्संधिपूर्ण न हो और जिसमें स्थावर सम्पत्ति का कोई अधिकार प्रत्यक्षतः और विनिर्दिष्टत:

प्रश्नगत हो, वह सम्पत्ति उस वाद या कार्यवाही के किसी भी पक्षकार द्वारा उस न्यायालय के प्राधिकार के अधीन और ऐसे निबन्धनों के साथ, जैसे वह अधिरोपित करे, अन्तरित या व्ययनित की जाने के सिवाय ऐसे अन्तरित या अन्यथा व्ययनित नहीं की जा सकती कि उससे किसी अन्य पक्षकार के किसी डिक्री या आदेश के अधीन, जो उसमें दिया जाय, अधिकारो पर प्रभाव पड़े।

स्पष्टीकरण- किसी वाद या कार्यवाही का लम्बन इस धारा के प्रयोजनों के लिए उस तारीख से प्रारम्भ हुआ समझा जायेगा जिस तारीख को सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय में वह वाद पत्र प्रस्तुत किया गया या वह कार्यवाही संस्थित की गयी और तब तक चलता हुआ समझा जायेगा जब तक उस याद या कार्यवाही का निपटारा अंतिम डिक्री या आदेश द्वारा न हो और ऐसी डिक्री या आदेश की पूरी तुष्टि या उन्मोचन अभिप्राप्त न कर लिया गया हो या तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा उसके निष्पादन के लिए विहित किसी अवधि के अवसान के कारण यह अनभिप्राप्त न हो गया हो।

इस धारा का उद्देश्य वादकारियों को वाद के लम्बित रहने के दौरान उसके विरोधी द्वारा अन्तरण के विरुद्ध सुरक्षा करना है अन्तरण किसको ? अन्तरण तीसरे पक्षकार को धारा तीसरे पक्ष के पक्ष में हित के सृजन की मनाही करती है विचाराधीन वाद का सिद्धान्त प्राइल्याय के सिद्धान्त का विस्तार है और वाद में के विधि निर्णयन (adjudication) को उन अन्तरितियो पर बाध्य करता है जिन्होंने सम्पत्ति वाद के लम्बित रहने के दौरान अन्तरण में प्राप्त किया है, जैसे नाम का सिद्धान्त विधि निर्णयन को पक्षकारों पर करता है, डिक्री के पारित हो जाने के बाद विचाराधीन बाद का सिद्धान्स प्राइन्याय पर अभिभावी (प्रबल) नहीं हो सकता। जहाँ कहीं भी विचाराधीन बाद को प्राइन्याय के सिद्धान्त के बीच प्रकट विरोध है वहाँ प्राइन्याय का सिद्धान्त प्रवत (prevail) होगा | प्रांगड़न्याय के सिद्धान्त की भाँति, विचाराधीन वाद का भी एक उद्देश्य वादों की बहुलता को रोकना है। दूसरे शब्दों में धारा का उद्देश्य वादकारियों के कार्य से अप्रभावित यथास्थिति को बनाये रखना है।

धारा 52 के अन्तर्गत अधिनियमित विधि कालोचितता (expendiency) या आवश्यकता पर आधारित है न कि सूचना अभिव्यक्त या प्रलक्षित पर ऐसा विचार **लार्ड क्रेनवर्थ बेलामी** बनान **सैवाइन** के बाद में व्यक्त किया था। भारत के न्यायालयों का भी यही विचार है यह सिद्धान्त सूचना पर आधारित नहीं है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि लम्बित वाद की अनतरिती को कोई सूचना थी कि नहीं, यह महत्वहीन है। धारा 52 में का सिद्धान्त (लोकनीति) का सिद्धान्त है।

Q3. चुनाव के सिद्धांत का आधार यह है की कोई व्यक्ति एक ही समय में अनुमोदन एवं अस्वीकार नहीं कर सकता है । उदाहरण सहित विवेचना कीजिये।

Ans धारा 35 में निर्वाचन का सिद्धान्त - धारा 35 में प्रतिपादित निर्वाचन के सिद्धान के सा होने के लिए निम्नलिखित चीजें आवश्यक है-

(i) एक ऐसी सम्पत्ति होनी चाहिए जो अन्तरक की नहीं है-सम्पतिजसके अन्तरण का अधिकार उसे नहीं है;
(ii) अन्तरक ऐसी सम्पत्ति के अन्तरण की प्रियवंजना करता है और
(iii) अन्तरण के उसी संव्यवहार के भाग रूप (अंग के रूप में) कोई फायदा (लाभ) सम्पत्ति के स्वामी को प्रदत्त करता है।

अन्तरित सम्पत्ति का स्वामी कोई और है - निर्वाचन का प्रश्न वहां नहीं उठता जहाँ अन्तरित सम्पत्ति के अन्तरण का अधिकार अन्तरक को है। निर्वाचन का प्रश्न वहीं उठता है जहाँ अन्तरित सम्पत्ति के अन्तरण का अधिकार अन्तरक को नहीं है। ध्यान रहे निर्वाचन का कार्य कोई और नहीं सम्पत्ति का स्वामी करता है। दूसरे शब्दों में निर्वाचन का दायित्व सम्पत्ति के स्वामी का होता है। ऐसा स्वामी जिसका सम्पत्ति में सम्पतिक हित (proprietory interest) होता है उपरोक्त उदाहरण में सम्पत्ति का स्वामी **'स'** है। अत: उसे ही निर्वाचन का कार्य करना है।

अन्तरण की प्रव्यंजना (Professes to transfer) - निर्वाचन के सिद्धान्स के लागू होने के लिए दूसरा आवश्यक तत्व है कि अन्तरक सम्पत्ति के अतरण की करता है - संपत्ति जो वास्तव में उसकी नहीं है। एक व्यक्ति के बारे में प्रथम दृष्ट्या यह उपधारणा की जाती है कि उसने वही अंतरित किया होगा उसकी अपनी है न कि वह जो सम्पति दूसरे की है। अतः जहाँ एक व्यक्ति दूसरे को सम्मति को प्रव्यंजना करता है वहा ऐसी सम्पत्ति के अन्तरण का उसका आशय अन्तरकविलेख से प्रकट (स्पष्ट) होना चाहिए। अन्तर का ऐसा आशय अभिव्यक्त या विवक्षित भी हो सकता है।

स्वामी को फायदा प्रदान करना - निर्वाचन का सिद्धान्त वह नहीं लागू है जहाँ अन्तरकअन्तरित होने वाली सम्पत्ति के बदले उसके स्वामी को फायदा नहीं प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में निर्वाचन के सिद्धान्त को लागू होने के लिए यह आवश्यक है कि अन्तरक स्वामी को उसकी अन्तरित होने वाली सम्पत्ति के बदले फायदा प्रदान करे। स्वामी को ऐसा फायदा वास्तविक अर्थो में प्रदान किया जाना चाहिए। इस धारा के प्रावधानों के अन्तर्गत जो फायदा स्वामी को प्रदान किया जाय वह उसे प्रत्यक्ष रूप से दिया जाना चाहिए अर्थात् अप्रत्यक्ष रूप से नहीं उदाहरण के

लिए जहाँ **'अ'** एक सम्पत्ति' सुमेरु जिसका स्वामी **'ब'** है को **'स'** को अन्तरण करने की प्रव्यंजना करता है और "ब' को उसकी सम्पत्ति के बदले 5,000 रुपया फायदा न देकर उसके पुत्र **(ग)** को देता है वहा यह माना जायेगा कि 'ब' को फायदा प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिया गया। यहाँ ' **ब** ' अर्थात् सम्पत्ति के स्वामी का निर्वाचनका कोई दायित्व नहीं बनता है। उसका दायित्व वहा बनता है जहां उसे फायदा प्रत्यक्ष रूप से दिया जाये।

निर्वाचन सम्बन्धी सामान्य सिद्धान्तों एवं अपवाद को विवेचना कर लेने के पश्चात् अब यह प्रश्न उठता है कि कब कहा जायेगा कि निर्वाचन हो गया है। इस प्रश्न के निर्धारण के लिए इस धारा के अन्तर्गत निश्चित नियमों की विवेचना की गई है। धारा के प्रावधानों अनुसार निर्वाचन दो प्रकार का होता है-अभिव्यक (express) और विवक्षित (implied)| अभिव्यक्त निर्वाचन वहा होता है जहां स्वामी स्पष्ट और विनिर्दिष्ट शब्दों का प्रयोग करके अपने आशय की अभिव्यकि करता है। जब निर्वाचन अभिव्यक्त होता है तब यह अन्तिम है और किसी चीज के अनुमान से निर्धारण की कोई गुंजाइश नहीं होती। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि निर्वाचन अन्तिम और निश्चयात्मक होता है। परन्तु जहाँ निर्वाचक के आशय का अनुमान कार्य या उसके आचरण में लगाया जाता है यहाँ निर्वाचन विवक्षित होता है।

यह धारा जिस निर्वाचन की अपेक्षा करती है वह स्वामी द्वारा दो असंगत अधिकारों के बीच सचेतन चुनाव है अतः विवक्षित निर्वाचन यहां होता है वहा स्वामी प्रदत्त फायदा स्वीकार करता है और-

(i) वह निर्वाचन करने के अपने कर्तव्य को जानता है, और

(ii) उन परिस्थतियों को भी जानता है जो निर्वाचन करने में किसी युक्तिमान मनुष्य (reasonable man) या सामान्य बुद्धि के मनुष्य के निर्णय को प्रभावित करती हैं (जैसे विभिन्न सम्पत्तियों का मूल्य और उनके सम्बन्ध में अपने अधिकार), अथवा

(iii) यदि वह उन परिस्थितियों को जांच करने के अधिकार का अधित्यजन (waives) कर देता है,

दूसरे शब्दों में जहां सम्पत्ति का स्वामी सारी सम्पर्क परिस्थितियों को जानते हुए या सभी सुसंगत तथ्यों को जानते हुए प्रदत फायदा स्वीकार करता है वहां चयन विवक्षित होता है। यदि बिना ऐसे ज्ञान के फायदा स्वीकार किया जाता है तो ऐसा निर्वाचन निर्वाचक पक्षकार के प्रतिनिधियों द्वारा प्रतिसंहरित या रद्द किया जा सकता है। निर्वाचन अभिव्यक्त हो या विवक्षित यदि यह एक गलतफहमी या तथ्य सम्बन्धी गलती के अन्तर्गत किया गया है तो वह बाध्य नहीं है और उसे निर्वाचक स्वयं के द्वारा रद्द किया जा सकता है परन्तु ऐसे ज्ञान या जानकारी के साथ किया गया निर्वाचन अन्तिम होता है।